भगवान् श्रीपरशुराम का अवतारकार्य





– म. स. पारखे
३७६ शुक्रवार पेठ, पूना २.

प्रकाषक :
ज. आ. मोंडकर,
भटवाडी, नं. २
गिरगांव, मुंबई नं. ४

[मिती वैशाख शु॥ ३, शके १८८४ (दिनांक ६ मई, १९६२) के दिन गुरुमंदिर, श्रीबालप्पा मठ, अक्कलकोट में श्रीपरशुराम जयंती के शुभअवसरपर श्री. म. स. पारखेजी ने दिये हुए मराठी भाषण का हिंदी अनुवाद.]

हिंदी अनुवाद : श्री. वि. मा. सावलापूरकर.

मुद्रक :
गो. दा. बेळगी,
'पेपको' प्रेस,
३७६, शुक्रवार पेठ, पुणें २.

श्रीमद् देवदेवेश्वर भगवान् श्रीपरशुराम



अग्रतश्चतुरो वेदा : पृष्ठत : सशरं धनु : ।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि ॥



॥ श्रीस्वामी समर्थ प्रसन्न ॥
॥ श्रीपरशुरामो विजयते ॥

परम सद्गुरु श्री गजानन महाराज, उपस्थित विद्वजन् और अन्य स्त्री पुरुष भक्तगण,

देव देवेश्वर भगवान् परशुराम जयंती का समारोह आज आप सब लोग संपन्न कर रहे हैं। गत कुछ वर्षों से इस समारोहके उपलक्षमें आप सबकी उपस्थिती मैं देख रहा हूं। आप सबके हृदयमें भगवान परशुरामके अवतार कार्य के प्रति ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा किस प्रकार उठ रही है, इसकी कल्पना मैं स्वानुभवसे कर सकता हूं।

वास्तवमें जिस वास्तुमें अभी हम उपस्थित हैं, उसके अधिष्ठानके समक्ष खडे होकर बोलने का प्रयास मैं प्रथम बार ही कर रहा हूं। विषय भी ऐसा लिया है कि जिसका विवेचन मुझ जैसे मंदबुद्धीवाले व्यक्तिके परे है। श्री स्वामीसमर्थ ही मुझे कुछ टूटे फूटे शब्द बोलने की प्रेरणा दें यह प्रार्थना करते हुए मुख्य विषय की ओर अग्रेसर होता हूं।

बहुत दिनोंसे मैं भगवान परशुरामके अवतार कार्य की ओर आकर्षित हो रहा हूं। एक बार इच्छॉ हुई कि उनके अवतार कार्य का थोडासा अध्ययन किया जाय। एतदर्थ किसी उपलब्ध ग्रंथ की खोज करने लगा, तो मेरी

बड़ी निराशा हुई। किसी अधिकारी व्यक्ति द्वारा सविस्तार लिखित एखाद जीवनीभी उपलब्ध नही है, इस बात का खेद हुआ। जो कुछ पढने को मिलाभी तो उसमें विसंगती अथवा अनाधिकार वर्णन दृष्टीगोचर हुआ। स्वयंहि व्यक्तिगत रुपसे संदर्भ एकत्रित करके अध्ययन क्यों न करूं ऐसा विचार उदित होने लगा। किन्तु जिस व्यक्ति की एकभी अधिकृत सविस्तार जीवनी उपलब्ध नही है उसके बारेमें पर्याप्त संदर्भ एकत्रित करना भी कोई साधारण बात नही है। और वह पर्याप्त संदर्भ प्रयत्न किये बिना क्योंकर प्राप्त हो? किन्तु भृगुकुल श्रेष्ठ जामदग्न्य की महिमा कुछ निराली ही है। प्रारंभके साशंक हृदय को अथवा इस कठिन कार्य के बोझसे कंपित होने वाली लेखनी को अंतस् से एक अलग ही प्रेरणा प्राप्त हो रही है इसकी प्रचीति क्षण क्षणमें आने लगी। उपलब्ध होने वाले संदर्भ अथवा सामग्री दिन प्रति दिन बढती चली गई। यदि इस कार्य को संपन्न करने के लिये संपूर्णतया जुटने की इच्छा की जाय तो सारी आयु भी कम ही पडेगी यह बात मेरी समझ में उसी क्षण आगयी।

जिस भार्गवरामकी गणना सप्तचिरंजीवोंमें की जाती है, जो दशावतारमें अग्रगण्य है, उन रेणुकानंदन के कार्य की व्याप्ति भी उसी प्रकार अविरत और अखंड चल रही होगी। तो ऐसे अखंड होनेवाले कार्य का परि-शीलन पूर्णतया करना किस तरह संभव होगा? अतः आज मैं अत्यंत ही स्थूल रूपमें भगवान भार्गवेयके अवतार कार्य का विवेचन करने का प्रयास कर रहा हूं।

आप सभी जानते हैं – कदाचित् मेरी अपेक्षा इस विषय का अध्ययन आपका ही अधिक हो सकता है – कि भगवान इस भूतलपर भिन्न भिन्न निमित्त अवतारित हुए हैं। इन अवतारोंमें भगवान परशुरामका अवतार छटवाँ गिना जाता है। मत्स्यकूर्मादि अवतारोंसे लेकर ठीक महात्मा बुद्ध के अवतार तक यदि कोई अवतार चिरंजीव कहा जा सकता है, तो वह केवल भगवान परशुरामका ही अवतार है। जब हम दशावतारोंमेंसे एकमेव

चिरंजीव अवतार के कार्य को अपनी दृष्टीसमक्ष रखते हैं, तो एकही विचार उठता है, कि मानव रूप धारण करके अवतार कार्य प्रारंभ करनेपर भगवान विष्णुको भार्गवराम के रूपमें ऐसा कौनसा कार्य अखंड रूपमें चालू रखना है ? यह हमें विदित ही है कि जब जब धर्मपर ग्लानि आती है तब तब किसी विशिष्ट ध्येय कि पूर्ति हेतु भगवान अवतार लेते है। प्रश्न यह है कि इस अवतारमें ऐसा कौनसा कार्य है कि जिसकी व्याप्ति अखंड है ? ऐसा कौनसा कार्य है जो अविरत चलना चाहिये ? मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभू रामचंद्रजीको ही लिजीये, श्रीकृष्ण परमात्माका अवतार देखिये, जिस कार्य को लक्षित करके अवतार हुआ, उसकी समाप्तिपर उन्होने पार्थिव देहका विसर्जन किया। फिर भगवान परशुराम का ऐसा कौनसा कार्य है जो त्रेता युगसे प्रारंभ होकर आजतक अखंड रूपमें चल रहा है ? यह विषय जितना कठिन है उतनाही वह नाजुक भी है। अपनी अल्प बुद्धीनुसार इस विषय का विवेचन करने के पूर्व उनकी जीवनीपर थोडा बहुत प्रकाश डालने की मेरी मनीषा है।

अबतक मैंनें भगवान् परशुरामका संबोधन विभिन्न नामोंसे किया है। जामदग्न्य, रेणुकेय, भृगुकुलनंदन, भार्गवराम और स्वयं परशुराम ये सब नाम उन्हे बादमें प्राप्त हुए है। उनके मातापिता को जो नाम लाडला था, वह बिलकुलही भिन्न हैं। उनके मातापिताने उन्हे 'राम' इस नामसे ही संबोधित किया। परशु प्राप्त कर लेनेपर और उसका उपयोग एक विशिष्ट कार्य के लिये किए जानेपर, बादमें उन्हें 'परशुराम' इस नामसे संबोधित किया जाने लगा। भगवान विष्णुका सातवाँ अवतारभी रामहि हैं। कृष्णा-वतारमें भी एक राम अवतरित हुए। अतः इन भिन्न भिन्न अवतारोंके रामोंका अंतर ध्यानमें लानेके लिए भार्गवरामको परशुराम, राघवरामको दाशरथी राम, एवं यादवरामको बलराम के नामोंसे संबोधित किया जाता है। जिस प्रकार भगवान परशुरामका अवतार कार्य महान और सर्व श्रेष्ठ है उसी प्रकार 'राम' इस शब्द की व्याप्तिभी गहन है। भगवान् महेश (शंकर) के ध्यान का अधिष्ठान राम ही हैं। और रामजी की तपस्या से

संतुष्ट होकर भगवान शंकरने केवल परशुही क्या अपितु सारे अस्त्रग्राम देकर उन्हे स्वतेजोधाम बना दिया है।

परशुराम को भार्गवेय कहते है वह कुल परंपरानुसार। त्रेतायुगमें जिस कुलमें राम का जन्म हुआ, उस भार्गव कुल का प्रारंभ भृगु ऋषीसे हुआ। कहते है की ऋषी के कुलको और नदी के उद्गम को नहीं खोजना चाहिये, परंतु परशुरामके वंश वृक्ष का अध्ययन भृगुऋषी की जन्मकथा की ओर इंगित करता है। च्यवन और्वा के पश्चात् ऋचिक ऋषितक हम पहुँचते हैं। परशुरामके अवतार कार्य की पार्श्वभूमि का अप्रत्यक्ष प्रारंभ यहीं से होता है। ऋचिक ऋषि ये एक महान तपस्वी थे। परमेश्वर प्राप्ति हेतु उन्होंनें हजारों वर्ष कडी तपश्चर्या की। देह दंड सहन करते हुए तपस्या जारी रखने वाले ऋचिक ऋषि को एक आकाशवाणी सुनाई दी। " अखंड ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए तपस्या करनेसे तुम्हारी मनोकामना पूर्ण नही होगी। उसके लिए तुम्हें गृहस्थाश्रमी बनना पडेगा "।

वास्तवमें देखा जाय तो, इस आकाश वाणीसे ऋचिक ऋषिको एक जबरदस्त धक्का लगा था। परंतु जब उन्हे पता लगा की आकाशवाणी करने वाले उनके ही पूर्वज हैं तो वे तपस्या खंडित करके गृहस्थाश्रम स्वीकार करने के लिये आश्रमसे बाहर निकले। यद्यपि उनका शरीरं तपोबलके कारण तेज:पुंज था फिरभी वृद्धावस्था के कारण जर्जरित उनके शरीर को देखकर कौन राजा उन्हें सहजभावसे अपनी कन्या दान करता? ऋचिक मुनी एक के बाद एक राज्य पार करते रहे परंतु पाणिग्रहण हेतु उनके योग्य कोई भी वधु उन्हे प्राप्त नही हो रही थी। अंतमें वे गाधिराजा के दरबारमें पहुंचे और उनकी इकलौती कन्या का पाणिग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। राजाको इसका बहुत दुःख हुआ। वह न तो उनकी इच्छा को ठुकरा सकता था और न उसकी पूर्ति के लिए अपने आपको तैयारही कर सकता था। यदि ऋचिक मुनी क्रोधित हुए तो वे शाप देंगे। इस भयसे उसकी स्थिति औरभी

बिकट बन गई । कन्यादान अस्वीकार करने के बजाय उसे एक नई सूझ सूझी ।

राजाने मुनिसे कहा,

"मेरी एक शर्त है, जो वीर पुरुष एक हजार सफेद घोडे (शामकर्णाश्वाः) मुझे लाकर देगा, उसे मैं अपनी कन्या ब्याहुंगा। और ये घोडे केवल सफेदही नहीं होने चाहिये बल्कि उनके कानपर काले पट्टे भी होने चाहियें"। इस विचित्र शर्त को सुनकर ऋचिक मुनि पसोपेश में पडे। फिरभी उन्होंने तपोबलसे प्रयत्न करने का निश्चय किया और शर्त के अनुसार उतनी संख्यामें घोडे लाकर राजा के दरबार में उपस्थित किए। अब राजा के पास कन्यादान के सिवाय और कोई चारा न रहा। ऋचिक मुनी का सत्यवती के साथ विवाह संपन्न हुआ और वे गृहस्थाश्रम व्यतीत करने निकल पडे। कुछ समयोपरांत सत्यवतीने उनके पास पुत्र कामना प्रकट की। सत्यवती जितनी स्वरूपवान थी, उतनीही बुद्धिशालिनी भी। पती के पास पुत्र कामना व्यक्त करनेपर ऋचिक ऋषिनें प्रसन्न होकर एक चरु बनाकर देनेकी स्वीकृती दी। सत्यवतीने अपनी मनोकामनाके साथ ही अपनी माता की भी पुत्र कामना पूर्ण करने का विचार किया और अपने पती को उसने ऐसी बिनती भी की।

योगबल और तप सामर्थ्यसे माँ बेटी की पुत्र कामना पूरी करनेका निश्चय ऋचिक मुनिने किया। पत्नीके लिए चरु तैयार करते समय उसमें उन्होंने ब्राह्म और रौद्र तेजका आविष्कार अन्तर्भूत किया और सास के लिए क्षात्र और वैष्णव तेजसे युक्त ऐसा चरु उन्होने तैयार किया। यद्यपि अपने सास के लिए चरु बनाते समय राजघराने के योग्य क्षात्रधर्मरत पुत्र हो इस बातका ध्यान मुनीने रक्खा फिरभी सासके मनमें शंका निर्माण हुई। पत्नी सास की अपेक्षा अधिक निकटवर्ती होती है ऐसी कल्पना करते हुए उसने विचार किया की मुनिवरने स्वाभाविक रुपसे अपनी पत्नीके लिए अधिक योग्य चरु बनाया होगा·तो वह चरु वह स्वयंही क्यों न लेले? इस प्रकार होनेवाले इस विपर्यास एवं चरु की अदला-बदलीमें ही परशु-

रामके जन्म का रहस्य प्रगट होता है। सत्यवतीद्वारा अनभिज्ञता से की गई इस गलती का परिणाम क्या होगा यह उसे स्पष्ट दिखाई दिया। उसके समान ऋषि-पत्नी को क्षात्र तेजसे आविर्भूत पुत्र होगा ऐसा समझते ही सत्यवतीने पतीसे कहा—

"भगवन्! ऋषी कुल को सुशोभित करनेवाला पुत्र मेरी कोखसे जन्म ले, क्या आप ऐसा नहीं कर सकते"?

"ठीक है तुम्हें तुम्हारी इच्छानुरुप पुत्र होनेपर भी चरु का तो प्रभाव रहेगा ही। वे गुण तुम्हारे नाती में उतरेंगे"। ऋचिक मुनीने ऐसा कहा।

सत्यवतीने जमदग्नीको जन्म दिया और हम सबको विदित ही है कि ऋचिक मुनि के चरुका वास्तविक स्वरुप जमदग्नीसुत राममें आविर्भूत हुआ। जैसा कि मैंने अभीतक बताया है की, चरु निर्मित करते समय क्षात्रतेज के साथ वैष्णवतेज और ब्राह्मतेज के साथ रौद्रतेज का प्रादुर्भाव मुनिने विभिन्न चरुओंमें किया। ऐसा क्यों?

त्रेतायुगमें समाज की व्यवस्था सुव्यवस्थित रुपमें चलाने के लिए यद्यपि प्रत्यक्ष रुपमें चार वर्णोंकी व्यवस्था नहीं थी फिर भी समाज के महत्वपूर्ण व्यक्ति किस मनोवृत्ति के होने चाहिये इस बातका दिग्दर्शन ऋचिक मुनिद्वारा चरु बनाने की भूमिका से स्पष्ट होता है।

संसारके प्रारंभसे भिन्न भिन्न युगों के इतिहास का अवलोकन करनेसे स्पष्ट होता है कि, जब ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें मित्रता एवं सहकार्य का निर्माण हुआ तब युग निर्माण हुआ। इसके विपरीत जब समाजके इन दोनों प्रभावी घटकों में वैमनस्य निर्माण हुआ तब संहार हुआ है, प्रलय हुआ है।

यद्यपि सत्यवती की इच्छानुसार उसे ब्राह्म-तेज युक्त पुत्र प्राप्त हुआ तौभी चरू के प्रचंड तेजका आविष्कार उसके नातीमें होनेवाला था। इस

तेज को ग्रहण करने योग्य शक्ति की भी आवश्यकता थी। संतान प्राप्ति हेतु तपोवनमें भ्रमण करनेवाले रेणु नामके राजा को अग्नीकुंडसे एक कन्या-रत्न प्राप्त हुआ। रेणु की कन्या होने के कारण उसका नाम रेणुका प्रचलित हुआ। भगवान विष्णु के तेज को सम्हालने का सामर्थ्य आदिमाता के सिवा और किसमें हो सकता था? और यज्ञकुंडमें सृजन पाई हुई अयोनिज शक्ति दुसरी और कौन हो सकती थी? रेणुका और जमदग्नी विवाह सूत्र में बंधे और इस दम्पत्ती को अन्य चार संतानों के पश्चात् प्रत्यक्ष भगवान का लालन पालन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। परशुरामकी यह ऐसी जन्मकथा है।

रेणुका समवेत जमदग्नी ऋषि आश्रम में जीवन व्यतीत करते समय जो विभिन्न प्रसंग पुराणोंमें उल्लेखित हैं वे भी उतने ही मार्मिक हैं। वैसे कहा जाय तो सारे भृगुकुल का कार्यकलाप ही अद्‌भुत है। भार्गवेयोंके आदि पुरुष भृगुमुनीने संसार को सर्व प्रथम अग्नि की प्राप्ती कराई। अग्नि का अस्तित्व युगों से सतत होने के कारण उसका महत्व हमारे ध्यानमें नहीं आता। डॉ. वॉक्समन द्वारा स्ट्रेप्टोमायसीन का अनुसंधान किये जानेपर उनकी किर्ती दिग् दिगंत में फैल गयी। उन्हे नोबल पुरस्कार तक प्रदान किया गया। परंतु जब संसारमें अग्नि ही नहीं था और भृगु मुनीने उसका संशोधन किया तो वह संशोधन कितना मौलिक होगा इस बात की हम कल्पना कर सकते है। भृगु मुनीके इस संशोधन का उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। ऋग्वेद और त्रैतरीय संहिता में इसका उल्लेख है।

केवल शुक्राचार्य को ही संजीवनी मंत्र अवगत था, ऐसी सर्व साधारण कल्पना है। परंतु शुक्राचार्य के पिता भृगुमुनिने अपनी पत्नी को संजीवनी मंत्रसे जीवित किया था। अर्थात उनके द्वारा हि शुक्राचार्य को संजीवनी विद्या प्राप्त हुई होगी यह स्पष्ट होता है।

जमदग्नी ऋषिका योगदानभी उतना ही मौलिक है। मुनिवर को एक बार धनुर्विद्या अवगत करने की इच्छा हुइ। लक्ष्य की ओर जमदग्नीद्वारा तीर चलाना और रेणुका माता द्वारा उसे वापिस लाकर देने का अभ्यास बडी

देर तक चलता रहा। सूर्य भगवान मध्यान को आगये। दूर पड़े हुए तीर को वापस लाने के लिए गई हुई सुकुमार राजकन्या थक गई। क्षणभर ही क्यों न हो, एक विशाल वृक्षके तले विश्राम करनेकी उसकी इच्छा हुई। सूर्यभगवान् के प्रखर तेजके कारण अपनी सुकोमल पत्नी को थका हुआ देखकर मुनिवर क्रोधसे संतप्त हो गये। पत्नी द्वारा वापस लाये गये उसी तीर को उन्होने सूर्य भगवान की ओर लक्ष्य किया। जमदग्नी के सामर्थ्य की कल्पना होने के कारण उनके द्वारा आलक्षित तीर द्वारा निर्माण होनेवाली परिस्थितिका आभास सूर्य भगवान् को हुआ और उन्होने तत्काल ही भूतलपर अवतीर्ण होकर जमदग्नीसे कहा—

"भाई! प्रखर तेज के बिना सूर्य कैसा? मैं शीतल कैसे हो सकता हूँ? अधिक से अधिक अपने तेजसे सुरक्षा हेतु कोई साधन आपको प्रदान कर सकता हूँ।"

और इस प्रसंगके कारण संसारको छत्र पादत्राण आदि प्राप्त हुअे। उनका उपयोग युगोंसे सतत रुपमें होने के कारण उनका उपयोग कब प्रारंभ हुआ इसका संशोधन करनेकी सर्व साधारणको आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। किन्तु त्रिवेणी संगम पर भरी दोपहरी में नंगे पैर चलने वाले व्यक्ति को इन दोनों वस्तुओंका महत्व स्पष्ट होगा।

अथर्ववेद में जमदग्नी ऋषि के बारेमें एक उल्लेख मिलता है जिसमें उन्हे कृमि नाश करनेमें पटु माना गया है। कृमी नाश करना यह एक तांत्रिक और पेचीदा बात है, ऐसा समझा जाता है। और अभीभी कुछ कृमियों पर शास्त्रियोंको विजय प्राप्त नहीं हुई है। इस वस्तुस्थितिको ध्यानमें रखते हुए जमदग्नी के युगमें जो आजसे कमसे कम तीन हजार वर्ष पीछे है, उनका कृमिनाशकपटु इस बात का उल्लेख विशेष ध्यानमें रखने योग्य है।

जमदग्नी ऋषि जितने बडे तपस्वी थे, उतनेही थे क्रोधी। नदीसे पानी लाने के लिए गयी हुई पत्नी को लौटने में विलंब होनेको वे सहन न कर

सके। जलक्रीडा करते हुए चित्रांगद का अवलोकन करते समय उस राजकन्या के मन में एक ही क्षण के लिए क्यों न हो अपने गत वैभव व वर्तमान बनवासी जीवन का एक तुलनात्मक चित्र उपस्थित होना भी उन्हे असहनीय हो गया। तपस्वी जीवन के इस कठोर मार्ग से थोडासा विचलन भी मृत्युदंड का भागी है ऐसा उन्होनें समझा। अतः क्रोध संतप्त ऋषि ने अपने पुत्रों को बुलाकर माता का वध करने का आदेश दिया। माता का वध करने के इस आदेश को पालन करने का साहस रुमण्वान, सुषेण आदि चारों बालकों में से किसी को भी नहीं हुआ। आदेश की अवहेलना ने ऋषि की क्रोधाग्नि को और भी भडका दिया। अंत में उन्होने अपने प्रिय राम को बुलाया। पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर मातृहत्या करने में उन्होने एक क्षण का भी विलंब नहीं किया। मुनिवर जितने शीघ्र कोपित हुए थे, आज्ञा का पालन होनेपर उतनेहि शीघ्र शांत भी हो गये। उन्होनें अपने प्रिय पुत्र पर प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दिया –

" स्वच्छन्दमरणं पुत्र, तुष्टे त्वं मयि लप्स्यसे "

कुछ विद्वानों ने परशुराम चिरंजीव है इस विधान की पुष्टि हेतु उनके पिता के इसी आशीष को आधार माना है।

इस आशीर्वाद के अलावा जमदग्नी ऋषीने परशुराम को और भी वर माँगने की आज्ञा दी और उस आज्ञा का पालन करते हुए भगवान् परशुराम ने जो वर माँगे वे भी उनके अंगीभूत गुणों का और उनकी प्रखर बुद्धिमत्ता का परिचायक है। माता और बंधुओं को पुनः जीवित करने की इच्छा तो कोई भी प्रकट करता परंतु उसके साथही उन्हें इस घटना की स्मृति भी न हो इस बात की इच्छा प्रकट कर माता के प्रति अपने जीवित अभिमान को उन्होने व्यक्त किया।

मातृहत्या का यही एकमेव उदाहरण पुराणों में मिलता है, इस बात का दावा आलोचकों द्वारा किया जाता है, किन्तु पिता की आज्ञा शिरोधार्य

कर मातृहत्त्या करनेवाले परशुरामनें जो दूसरा वर माँगा वह भी उतना ही अद्वितीय है ।

इस घटनाके पश्चात् जमदग्नि ने क्रोध पर विजय पायी । यहाँ तक की प्रत्यक्ष क्रोध देवता भी उन्हें क्रोधित न कर सकी ।

जब क्षत्रियोंने अन्याय से ब्राह्मणोंपर शस्त्र उठाया तब ब्राह्मणों की इस जितक्रोध वृत्तीनेही उनसे बदला लेने की भावना को उभडने नहीं दिया ।

वयं सर्वे जितक्रोधाः क्षत्रियैर्विनिपातिताः । अन्यथा
अस्माकं न वधे शक्ताः क्षत्रिया हैहयाधिपाः ।

ब्राह्मणों की इस जितक्रोधवृत्तिके कारण हैहयों को उन पर शस्त्र उठाने की विपरीत बुद्धि हुई । इसी कारण सहस्त्रार्जुन का प्रसंग उपस्थित हुआ । पिता की आज्ञा का पालन करने मात्र के लिए मातृहत्त्या करना और उनके वर से माता का पुनर्जीवित होना परशुराम को मातृहत्त्या के पापसे विमुक्त करने के हेतु पर्याप्त नहीं था । इस पाप का परिक्षालन करने हेतु उन्होने कैलास पर्वत पर जाकर कठिन तपस्या आरंभ की । भगवान् गिरिजापति ने प्रसन्न होकर उन्हें संपूर्ण धनुर्वेदका ज्ञान कराया । उन्हें सारा अस्त्रग्राम प्रदान किया ।

डार्विन की विचारधारा को मान्य करनेवाले इस देश के कुछ विद्वान, परशुराम के पास परशु होने के कारण, उस समयकी भारतकी उत्क्रान्ती की श्रेणी निश्चित करने का प्रयास करते हैं । उनका कथन है कि धनुष्य की अपेक्षा परशु निम्नस्तरका अस्त्र है ।

युद्ध में भी प्रसंग के अनुसार भिन्न भिन्न अस्त्रों का उपयोग करना पडता है । द्वंद्व युद्ध के लिये उपयोगी अस्त्र, दूर से आक्रमण करने के लिए अनुपयुक्त सिद्ध होगा । संभव है की परशुरामनें परशु का उपयोग अधिक मात्रा में

किया हो। वास्तव में परशु उनका प्रिय अस्त्र है भी। किन्तु उन्हें सारी युद्धनीति अवगत थी। भगवान शंकर से प्राप्त वर से यही सिद्ध होता है की, उनका सारे अस्त्रग्राम पर प्रभुत्व था। आगे जब हम उनकी प्रभु रामचंद्रजी से हुई भेंट का विचार करेंगे अथवा भीष्म, द्रोण, कर्ण जैसे महा पराक्रमी योद्धाओं को उनके गुरु परशुराम द्वारा दिये गये युद्धनीति संबंधीं पाठों का विवेचन करेंगे, तब हमें स्पष्ट होगा की परशुराम के पास केवल परशुही था यह सत्य नहीं अपितु उन्हें सारे अस्त्र प्राप्त थे। अतः केवल परशु इस अस्त्र से हि उस समय के सामाजिक स्थिति की श्रेणी तय करना अयोग्य होगा।

चरुओं की अदला बदली यह घटना जैसे परशुराम के प्रगटीकरण की पार्श्वभूमी बनी, उसी प्रकार जमदग्नी के समय भी एक महत्वपूर्ण घटना घटित हुई। स्वाश्रम में आये हुए अतिथि का स्वागत करने की इच्छा असाधारण न थी। सहस्त्रार्जुन जैसे पराक्रमी राजा और उनके साथ आये हुए संपूर्ण परिवार का उचित रुप में आतिथ्य करते बने इस इच्छा से प्रेरित होकर उन्होनें कामधेनु से सहायता माँगी। जमदग्नीने राजासे प्रार्थना की कि वे थोडी विश्रांति लेकर नदी से स्नानादि से निवृत्त होकर पधारें।

स्नानादिसे निवृत्त होकर वापिस आनेपर राजा को पर्णकुटी के स्थानपर एक भव्य और जगमगाती नगरी ही दृष्टीगोचर हुई। अपने जैसे पराक्रमी राजा की अपेक्षा एक आश्रमवासी मुनी के पास होनेवाले इतने ऐश्वर्य का उसे डाह होने लगा। सरल प्रकृतिवाले जमदग्नी मुनिने यह सारा परिवर्तन कामधेनु की कृपासे हुआ है इस प्रकार को स्पष्ट कर दिया।

आदर सत्कार एवं आतिथ्य के उपलक्ष में आभार व्यक्त करने के बजाय सहस्त्रार्जुन राजा को कामधेनु हडपने की लालसा हुई। कामधेनु के हरण के इस प्रसंग के कारण भगवान् परशुराम के अवतार कार्य का एक महत्त्वपूर्ण भाग प्रारंभ हुआ।

सहस्रार्जुन ने कामधेनु को हडपने का निश्चय तो किया किन्तु क्या वह इस कार्य को केवल अपने बाहूबल से पूर्ण कर सकता था ? कामधेनु तो स्वर्ग लोक चली ही गई परंतु बेचारे सहस्रार्जुन को भगवान् परशुराम से प्रतिकार करना पड़ा । यह कार्य सहज नहीं था क्योंकि भगवान् परशुराम को उनके पिता का यह वर प्राप्त था " जब तक तुम्हारे शरीर में वैष्णव तेज विद्यमान रहेगा तब तक तुम सब जगह विजयी होगे "। इस वरदान के कारण सहस्रार्जुन की क्या स्थिति हुई होगी, इसकी आप ही कल्पना कर सकते हैं । यद्यपि सहस्रार्जुन के वध से कामधेनु के अपमान का बदला ले लिया गया, किंतु एक बलवान राजा के वध ने क्षत्रिय जाति के बैर को भडकाया । सहस्रार्जुन के पुत्रों को परशुराम से युद्ध करना असंभव था। किंतु जितक्रोध जमदग्नी ऋषि का उनकी ध्यानावस्था में वे सहज ही हनन कर सकें । जमदग्नी का इस प्रकार वध किए जाने के कारण रेणुका माता की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हुई और परशुराम को मदांध और अन्यायी क्षत्रियों का संहार करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ी । परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय किया इस घटना को कुछ विद्वान या तो एक किंवदंति के रुप में मानते हैं, या मानते हैं की, इतना प्रयत्न करने के बाद भी परशुराम पृथ्वी को निःक्षत्रिय करने में असमर्थ रहे ।

एक बार पृथ्वी निःक्षत्रिय करने के बाद पुनः उसे निःक्षत्रिय करने का प्रश्न ही कहाँ उठता है ? और इक्कीस बार प्रयत्न करने के बाद भी पृथ्वी निःक्षत्रिय न कर सकने के कारण इस संग्राम में परशुराम को विजयी कैसे कहा जाय ? साधारण तया देखने से यह आक्षेप मान्य होने लगता है । किन्तु यदि हम परशुराम के कार्यों का गम्भीरता से विवेचन करें तो स्पष्ट होगा कि परशुराम को इक्कीस बार हाँथ में शस्त्र क्यों उठाना पडा ।

वीर पुरुष हाँथ में शस्त्र उठाने के पूर्व कुछ बंधनों का पालन करते हैं—

शरणागते न्यस्तशस्त्रे याचमाने तथाऽर्जुन ।
अबाणे भ्रष्टकवचे भ्रष्टभग्नायुधे तथा ।।

न विमुञ्चन्ति शस्त्राणि
शूराः साधुव्रते स्थिताः ।
त्वं च शूरतमो लोके
साधुवृत्तश्च पाण्डव ॥

उपरिनिर्दिष्ट न्याय के अनुसार यदि परशुराम ने कुछ व्यक्तियों पर शस्त्र न उठाया हो तो वह वीर पुरुष के योग्य ही है। संसार में क्षत्रिय बचे रहने का एक मात्र यही कारण है। इसके सिवा क्षात्र-धर्म का पालन करने वाले क्षत्रियों पर परशुराम क्रोधित नहीं थे अपितु कुछ क्षत्रिय राजाओं के साथ उनके संबंध बहुत अच्छे थे। तो ऐसे क्षत्रिय पृथ्वी पर अवश्यमेव बचे रहेंगे। जिन्होंने अन्यायही नहीं किया उनपर शस्त्र उठाने का क्या प्रयोजन? किंतु लुकछिपकर येनकेन प्रकारेण जीवित रहनेवाले क्षत्रियों में जब अहंकार और अन्याय की लहर उठी तब परशुराम को शस्त्र उठाना पड़ा। इक्कीसबार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करने के प्रयास को हमें इसी दृष्टि-कोण से देखना चाहिये।

जिस प्रकार पुराण काल मे होत्रवाहनादि क्षत्रियों के साथ परशुराम के संबंध घनिष्ट थे उसी प्रकार ऐतिहासिक काल मे भी परशुराम को इष्ट देव मानने वाले कुछ राजा मिलते हैं। शिवाजी महाराज ने राज्याभिषेक की तैयारी इस प्रकार की कि, वह राष्ट्रीय महोत्सव के रूप में सुशोभित हो। इसके पूर्व सर्व प्रथम वे चिपलून गये और वहाँ उन्होंने भार्गवराम की पूजा की। तत्पश्चात् वे रामवरदायिनी देवी के दर्शन के लिए प्रतापगढ गये ऐसा इतिहासकारों का कथन है।

शिवछत्रपती के भी पूर्व काल के ताम्रपटों अथवा शिलालेखों में बहुत ही मार्मिक उल्लेख मिलते हैं। जिस राजाके बारे में वह लेख होगा उसके अंगीभूत गुणों का वर्णन करते समय उनकी तुलना परशुराम से की गयी है। शस्त्रों को चलाने में निश्चयी स्वभाव या प्रतिज्ञापूर्ति की लालसा, इन गुणों का

वर्णन करते हुए, उस राजाकी तुलना परशुराम से की गयी है। यदि क्षत्रियों के मन में परशुराम का द्वेष होता तो ऐसे उल्लेख न मिलते। अपने अध्ययन के लिए ताम्रपट और शिलालेखों का अध्ययन कितना उपयोगी सिद्ध होगा यह ध्यान देने योग्य है।

जमदग्नी का वध होता है और रेणुका माता की इच्छापूर्ति हेतु क्षत्रियों का संहार करने का कार्य परशुराम को करना पडता है। इसी बीच जमदग्नी ऋषि की अन्त्येष्टि क्रिया का प्रसंग भी उतना ही अलौकिक है। जमदग्नी जैसे महान विभूति की अन्त्येष्टि क्रिया के लिए आवश्यक था उपयुक्त स्थान और योग्य पुरोहित।

कावड में मातापिता को रखकर योग्य स्थान की खोज में परशुराम निकले और पहुँचे उस स्थान में जहाँ आकाशवाणी हुई थी। उस स्थान को आज मातापूर या माहूरगढ के नाम से पुकारते है और उसे आज तीर्थ क्षेत्र की महत्ता प्राप्त है। वहाँ परशुराम ने अंत्येष्टि क्रिया करने का निश्चय किया।

आदिगुरु भगवान् दत्तात्रेय ने पुरोहिती की। यह घटना उनके मातापिता के उच्च स्थान को प्रदर्शित करती है। इतना ही नहीं अपितु परशुराम और दत्तात्रेय का गुरुशिष्य के नाते जो संबंध प्रस्थापित हुआ, उसका प्रारंभ कब और कहाँ हुआ वह भी ध्यान में आवेगा।

अन्यायी क्षत्रियों के संहार के निमित्त परशुरामको सब जगह विजय प्राप्त होती गयी। सारे भूप्रदेश पर उनका वैभव प्रस्थापित हो गया। किन्तु परशुराम उस वैभव को स्वयं थोडे ही उपभोगना चाहते थे ? समाज में बराबरी बनाये रखने की दृष्टि से क्षत्रिय संहारकी प्रतिज्ञा पूर्ण होते ही वे कृतकार्य हो गये हैं इस प्रकार की उनकी धारणा हो गयी। प्राप्त हुई सब संपत्ति या भूमि का स्वामित्व अश्वमेध यज्ञ संपन्न करके उन्होने कश्यप मुनि को दान कर दी। इस प्रकार क्षत्रिय संहार की पार्श्वभूमि स्पष्ट होगी।

क्षत्रियों के पुनर्संवर्धन के लिए दान की हुई भूमिपर परशुराम ने नहीं रहना चाहिये ऐसा आदेश कश्यप ऋषि से पाकर वे महेन्द्रगिरीपर निवास करने लगे। क्षत्रियों के द्वेष के कारण समाज में उनके लिए कोई स्थान नहीं रहा था। इसीलिए कश्यप ऋषि द्वारा परशुराम को ऐसा आदेश दिया गया इस प्रकार प्रचलित एक विचार धारा पढ़ने को मिलती है। क्षत्रियों का संहार कार्य करते समय जिन क्षत्रियों द्वारा क्षात्रधर्म का पालन किया जा रहा था उन पर तो परशुराम ने शस्त्र भी नहीं उठाया। इस प्रकार बचे रहे क्षत्रिय परशुराम का द्वेष क्यों कर करते? परशुराम का क्षत्रियों के प्रति द्वेष होने की अपेक्षा क्षत्रियों के मन में उनके प्रति भय के कारण कुछ क्षत्रियों को समाज में रहना ही असंभव हो गया था, यह कहना उचित होगा। क्षात्रधर्म का पालन करने वाले क्षत्रिय तनिक निर्भय हो सकें, इस उद्देशसे ही दान किये गये भूमी पर परशुराम न रहें, ऐसा आदेश कश्यप ऋषि द्वारा दिया गया होगा। पृथ्वी का दान कर देने और उस पर न रहने का आदेश प्राप्त होने पर उन्हें स्वयं के लिए भूमि की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसके लिए परशुराम द्वारा निर्माण किए गये अपरांत की घटना भी एक अद्‌भुत घटना है। वह एक भौगोलिक सत्य भी है।

सह्याद्रि के सर्वोच्च शिखरपर खड़े होकर परशुराम ने वरुण देवता को पीछे हटने की आज्ञा दी, जिसके कारण भडौंच से लेकर कन्याकुमारी तक एक नया भूप्रदेश निर्माण हुआ जिसे 'अपरांत' या 'सप्तकोंकण' कहते हैं। कश्यप ऋषि को पृथ्वीदान करने के साथ ही भार्गव राम के अवतार कार्य की प्रथम कालावधि समाप्त हुई।

इसके पश्चात ऐसा दिखाई देता है की अब तक निरंतर हाँथ में सज्जित परशु को भार्गवेयने कमर में रख दिया। अपने कुलपुरोहित के समक्ष 'अन्याय के अतिरिक्त कभी भी शस्त्र न उठाऊंगा' इस प्रकार की प्रतिज्ञा करनेवाले परशुराम को लगता है की, इसके पश्चात कभी भी शस्त्र

उठाने की आवश्यकता प्रतीत न हुई होगी। दान की गयी पृथ्वी का उपभोग निषिद्ध हो जाने के कारण यद्यपि परशुराम नवनिर्मित भूप्रदेश में निवास करने लगे, उनका भिन्न भिन्न तीर्थ क्षेत्रों का परिभ्रमण करने का कार्य अबाधित चलता रहा इस प्रकार का उल्लेख पुराणों में मिलता है।

महेन्द्रगिरीपर निवास प्रारंभ करनेपर उन्होंने पुन: तपस्या प्रारंभ की। तपस्या प्रारंभ करने पर अन्य लोगों को दर्शन प्राप्त होना धीरे धीरे कम होने लगा। यहाँ तक कि उसकी मर्यादा निश्चित तिथी तक आ गयी और आगे जाकर किसी एखाद भाग्यवान को ही उनके क्षणमात्र दर्शन का लाभ प्राप्त हो सकने तक नौबत आ गयी।

भडौंच से लेकर कन्याकुमारी तक के प्रदेश में स्वयं के निवास के साथ ही एक और भी प्रयोग उन्होंने किया। विभिन्न प्रदेशों के ब्रह्मकर्मरत लोगों को एक जगह लाकर उनकी बस्तियाँ बसायी! बिलकुल दक्षिण में नंबुद्री ब्राह्मणों की बस्ती बसायी। उसके लिए वे उत्तर के अहि क्षेत्र से ब्रह्मवृंदों को ले आये। गोआ के इर्दगिर्द गौड प्रदेश से आये हुए सारस्वत ब्राह्मणों को बसाया। गोआ और केरल के बीच के प्रदेश में जो ९६ घराने बस्ती करने लगे उन्हें 'शहाण्णवी' या 'शेणवी' के नाम से पुकारा जाने लगा। चित्पावनों की मूल बस्ती के बारे में भिन्न भिन्न मत होने पर भी एक मत ऐसा भी है जो यह मानता है कि, यह जमात परशुराम के कारण हि चिपलून के प्रदेश में आयी। भडौंच के इर्दगिर्द बसनेवाले लोगों ने अपने आप को 'भार्गव' यह संज्ञा दी। यज्ञ के लिए, श्राद्ध के लिए या भूमिदान के लिए परशुरामने हमें कोंकण में लाया ऐसा नंबुद्री, शेणवी या सारस्वत जमातें मानती हैं। केरल या कारवार इस प्रदेश को आज भी 'परशुराम क्षेत्र' कहा जाता है।

परशुराम ने ब्राह्मणों को नए प्रदेश में बसा तो दिया किन्तु समाज की सुव्यवस्था के लिए चारों वर्णों को बांटे हुए काम कौन करें? यदि वे सारे

ब्राह्मण विद्याभ्यास में या यज्ञयागादि में लगे रहेंगे तो उस बस्तीका संरक्षण कौन करेगा? अतः उनमें से ही कुछ लोगों को ग्रामरक्षक का कार्य सौंपा गया। कुछ अंशों में क्षत्रियों के अनुरुप कार्य करने वाले ब्राह्मण वर्गका ध्यान वेदाध्ययन से दूर हो गया। स्वभावतः वेद परायण ब्राह्मणवर्ग ने इस मूल ब्राह्मणवर्ग को उनके ग्रामरक्षक होने के कारण चातुर्वर्ण्य के समान मानते हुए अपने से निम्नस्तर का मानना प्रारंभ किया इसी प्रकार के और अन्य कार्य भिन्न भिन्न लोगों को बाँट दिए गये और उन्हें 'शास्त्रंगार' 'वैद्य' कहने लगे। परशुराम के क्षत्रिय संहार के कारण उद्भूत पाप को अपने सिर मंडवाने वाले वर्ग को 'मुस्साद' के नाम से पुकारा जाने लगा। और इस प्रकार धीरे धीरे केरल में अेक नया समाज निर्माण हुआ।

लगता है अपरांत में परशुराम ने भिन्न भिन्न स्थानोंपर ब्राह्मणों से बडे बडे यज्ञ करवाए। गोआ में पेडणें स्थान के पास परशुराम ने यज्ञ किया ऐसी धारणा है और वहाँ एक भस्म का पर्वत है ऐसा भी कहा जाता है।

इन नवनिर्मित प्रदेशों में भिन्न भिन्न स्थानों में परशुराम ने शिवलिंगों की स्थापना की और उन्हीं स्थानों के पास तीर चलाकर गंगा को निर्माण किया। बंबई के वालुकेश्वर और उसके पास की बाणगंगा की स्थापना उन्ही स्थानों में से एक है। यह वालुकेश्वर का देवस्थान आज भी गौड प्रदेश से जानबूझकर बसाये गये, सारस्वत ब्राह्मणों के अधिकार में है यह एक ध्यान देने योग्य बात है।

हाँथ से तीर चलाने से नये प्रदेश का निर्माण हुआ इस कल्पना में भी एक भौगोलिक सत्य दिखलाई देता है। पृथ्वीका आजका मानचित्र अन्तर्गत विस्फोट के कारण रूप बदलता हुआ तैयार हुआ है। हम जानते हैं कि एक समय जो भूमि समुद्रमें समाई हुई थी वह उपर आ गयी। मैदान पर्वतों में परिणित हो गये और पर्वतों का परिवर्तन मैदानोंमें हो गया। आधुनिक मतावलंबीयोंकी मान्यता है कि परशुराम जैसे अवतारी विभूतीके तीर चलाने के कारण न सही, कुछ भौगोलिक परिवर्तनों के कारण सह्याद्री

पर्वत श्रेणियोंके पश्चिम का प्रदेश निर्माण हुआ होगा। कुछ भी हो, नये प्रदेश का निर्माण हुआ, इस बात का पुराणोंमें किया गया उल्लेख स्वीकार करनाही पडेगा।

अपरांत का मध्य गोकर्ण क्षेत्र है। उस क्षेत्र से परशुराम का संबंध भी घनिष्ट है। समुद्रने जब अपनी मर्यादा को पार कर इस क्षेत्रको जलमय किया; तब वहाँ का ब्राह्मण वर्ग महेंद्रगिरीपर परशुरामके पास गया और उनसे प्रार्थना की कि उस क्षेत्र को प्रलयसे बचावें। तत्कालही परशुराम गोकर्ण क्षेत्रके पास आये और उन्होने वरूण देवताको पीछे हटने की आज्ञा दी। श्रद्धावानकी इस बातपर श्रद्धा होगी। परंतु आधुनिक मतवादी इस प्रसंग की उपपत्ती भिन्न रूपसे करेगा। वह कल्पना करेगा कि प्रलयसे भूमिकी रक्षा करने के लिये बाँध बनाना या भराव डालने जैसा कोई काम वहाँ किया गया होगा। आज गोकर्ण महाबळेश्वर क्षेत्र का संबंध रावण से लगाया जाता है। क्षेत्र महात्म्य में केवल इसी बात का उल्लेख है। गोकर्ण मंदिर की प्रदक्षिणा करते समय इस क्षेत्रके उपाध्याय अेक छोटासा शिवमंदिर दिखाते है, वह आदिगोकर्ण है। इसका पुराणों कें बाहर भी परशुराम के साथ उपर बताया गया संबंध है ऐसा कहा जाता है।

महेंद्रगिरीपर तपस्या में लीन परशुराम कभी कभी समाज में उपस्थित होते थे। वाल्मिकी रामायणमें इनमेंसे एक महत्वपूर्ण प्रसंग का उल्लेख है।

राजा दशरथ अपने पुत्रोंका विवाह संपन्न कराने के पश्चात अपनी नगरी को लौट रहे थे उस समय यकायक परशुराम प्रगट होते हैं। जनक राजाके पास होनेवाले शिवधनुष्य को प्रभु रामचंद्रने स्वयंवर में तोडा था। उसका निमित्त आगे करते हुए अपना धनुष्य रामचंद्रजीको देनेके हेतुसे परशुरामने यह आकस्मिक दर्शन दिया।

भगवान विष्णुका छठाँ अवतार चिरंजीव होनेपर भी उसके विशिष्ट कार्यकी समाप्ति हो चुकी थी। क्षत्रियों और ब्राह्मणों का संग्राम भी समाप्त हो चुका

था। क्षत्रियों को ब्राह्मणों का महत्व और उनकी आवश्यकता मान्य हो चुकी थी। और दोनों के सहकार्य से निर्माण होनेवाले एक नये युगका प्रारंभ भगवान् विष्णुको एक और अवतार लेकर करना था। अतः अन्यायी और क्रूर क्षत्रियों का दमन करने के लिए उठाये गये शस्त्रके पश्चात् समाजकी सुव्यवस्था तथा अभिवृद्धिके लिये क्षत्रियों के हाँथ में देना आवश्यक है यह जानकरही कदाचित् परशुरामने अपना निजी वैष्णव धनुष्य और अपना तेज उस भेंट के समय रामचंद्रजी को दिया। किन्तु इस प्रसंग की ओर भी भाषान्तरकारोंने और टीकाकारोंने जिस सम्यक् दृष्टीसे देखना आवश्यक था वह नहीं देखा।

महाराष्ट्रके संत कवियों पर इन दोनों रामों के इस मिलनका क्या प्रभाव पडा इसका ज्ञान, स्वामी रामदासजी के भार्गव अवतार और संत एकनाथ महाराज के भावार्थ रामायण के वर्णन से होता है।

द्वंद्वयुद्ध या जयापजयके लिए परशुराम उस समय प्रकट नहीं हुए थे यह हमें प्रतीत होता है।

राघवराम के भेंट के समय प्रगट होनेवाले परशुराम तेज का वाल्मिकीजीने बहुत ही सुंदर शब्दों में वर्णन किया है।

ददर्श भीमसंकाशं जटामंडलधारिणम् ।
भार्गवं जामदग्न्येयं राजा राजविमर्दनम् ।
कैलासमिव दुर्धर्षं कालाग्निमिव दुःसहम् ।
ज्वलन्तमिव तेजोभिर्दुर्निरीक्ष्यं पृथग्जनैः ।
स्कंधे चासज्य परशुं धनुर्विद्युद्गणोपमम् ।
प्रगृह्य शरमुग्रं च त्रिपुरघ्नं यथा शिवम् ।

(वाल्मीकि रामायण बालकांड. सर्ग : ७४ श्लो. १७ ते १९)

अनेक स्थानोंपर परशुरामजी के शरीर अथवा तेजका वर्णन किया गया है। वह लगभग इसी से साम्य रखता है। भार्गवराम के विराट शरीरका वर्णन करते समय वाल्मीकी के समक्ष कैलास की प्रतिमा खडी होती है या उनका तेज मुनिवर्य को कालाग्नि के समान दुःसह प्रतीत होता है। स्कंध पर परशु धारण करनेवाले जामदग्न्य, उन्हें प्रति शिव ही प्रतीत होते हैं। परशुरामजी का तेज कितना प्रज्वलित है, इसकी कल्पना इन वर्णनोंसे की जा सकती है। भगवान् कृष्ण से जो भेंट हुई उसकी पार्श्वभूमि और भी भिन्न है। जरासंध के आक्रमण के कारण होने वाले यादवोंके छल को कम करनेके लिए बलरामदादा के साथ श्रीकृष्ण परमात्मा जब दक्षिण की ओर चल पडे; तब कृष्णा और वेण्णा नदीयों के संगम पर अेक बडे भारी वृक्ष के नीचे उन्हें परशुरामजी का दर्शन हुआ। हवन के हेतु पालन की गयी गाय उनके साथ थी। इस उल्लेख से पता चलता है कि परशुरामजी का कार्य अव्यक्त रूपमें और सतत किस प्रकार चल रहा था। इस मिलन के निमित्त किया गया परशुरामजीका वर्णन मात्र तपस्वी का वर्णन है।

जरासंध से युद्ध करने के लिए कौनसे दांव सफल हो सकेंगे इसका ज्ञान परशुरामजीनें दिया। हम जानते हैं कि, कृष्ण-बलराम ने दुर्गयुद्ध पद्धतिसे जरासंध का हनन किया। इस सिधेसाधे प्रसंग से ही हम जान सकते हैं कि परशुरामजीका युद्धनिति में कितना प्राविण्य था। जिस प्रदेशमें कृष्ण परमात्मा और परशुरामजी का मीलन हुआ, उस प्रदेशके राजा अन्यायी और क्रूर थे। फिर भी उनपर आक्रमण न करते हुए शीघ्रता से आगे जाने की मंत्रणा उन्होंने दी। ऐसे उन्मत्त राजाओं को स्वयं दंड देने की उस समय उनकी इच्छा न थी ऐसा प्रतीत होता है।

परशुरामजी का कार्य माने क्षत्रियोंका संहार, ऐसा जो विचार अनेक लोगोंका है वह कैसे गलत है इसका परिक्षण एक और उदाहरण से करें।

यदि क्षत्रियोंके प्रति उनके हृदयमें केवल क्रोधही होता तो भीष्म जैसे राजवंशी को वे अपना शिष्योत्तम न बनाते और समस्त धनुर्वेद का ज्ञान उन्हें न दिया होता। इतनाही नहीं अपितु भारतीय महासंग्राम का सेनापतीपद स्वीकार करने वाले अपने इस श्रेष्ठतम शिष्य की धनुर्विद्या की तैयारी अंबा प्रकरण के निमित्त लगातार तेईस दिन तक युद्ध करके वे कसौटीपर न रखते।

भीष्म जन्मसे क्षत्रिय थे। फिरभी उनकी प्रखर बुद्धिमत्ता तथा अतुलनीय ग्रहणशक्ति देखकर परशुरामजीने उन्हे धनुर्वेद के साथ साथ राजनीतिका भी ज्ञान कराया। महाभारतमे भीष्मके कार्य की ओर देखनेसे जिस तरह उनके कुशल महासेनापतीपदकी कल्पना हम कर सकते है तद्वतही वे एक सर्वश्रेष्ठ राजनीतिज्ञभी थे इसका भी ज्ञान हमे होता है।

क्षत्रिय संहार के प्रसंगसे प्राप्त उस भूतल के स्वामित्व एवं ऐश्वर्य का दान कश्यप मुनि को करनेपर परशुराम ने अपने पास कुछ भी नही रखा। यह बात द्रोणाचार्य से हुई उनकी भेंटसे स्पष्ट होगी। संपत्ति की अभिलाषा से न सही वरन् अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वित्तेच्छा रखकर द्रोण परशुराम के पास जाते हैं। सर्वस्व दान करने के पश्चात् अन्न और देने लायक धन परशुराम ने अपने पास रखा ही कहाँ था? किन्तु याचक को विन्मुख भेजना नही चाहिये अतः अस्त्रविद्या का दान कर परशुराम द्रोण को संतुष्ट कर देते हैं।

कर्ण जैसा महान योद्धा किन्तु जन्मसेही अभागी। इतनी प्रचंड गुरुकृपा प्राप्त करके भी अन्तकाल में परशुराम के श्राप के कारण उन्होनेहि सिखाई हुई विद्या का उस बेचारे से उपयोग न करते बना।

युधिष्ठिरजीनें भी अल्पावधि के लिए क्यों न हो परशुराम का दर्शन प्राप्त किया इसका उल्लेख महाभारत में मिलता है। दुर्योधन को भी दंभोद्भव की कथा बताकर परशुरामजी ने युद्धसे निवृत्त करने का प्रयत्न किया था। किन्तु इस के पश्चात् परशुरामजी का प्रकट होना यथा तथाहि हो गया।

युद्धनिति के समान ही तंत्रशास्त्र पर भी परशुरामजी का बडा भारी अधिकार दिखाई देता है। शिवजी से उन्होने केवल धनुर्वेद की ही प्राप्ति नहीं की अपितु श्रीविद्या के भंडार को इस पृथ्वीपर उन्होने प्रस्तुत किया। इसी कारण त्रिपुरा सुंदरी की उपासना दत्तात्रेय से उन्हे प्राप्त हुई। प्राकृत जनों के लिये दुर्बोध उस विद्या को सरल रिती से प्रदर्शित कि जावे इस हेतु उन्होने दत्तात्रेय से प्रार्थना की, और 'त्रिपुरोपास्ति पद्धति' ये ग्रंथ निर्माण हुआ। उसको और भी सरल स्वयं परशुराम ने किया। उसे "परशुराम कल्पसूत्र" इस नामसे जानते हैं। इस ग्रंथ को और भी अधिक सरल भाषा में प्रस्तुत करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होने गुरुशिष्य संवाद के रुप में "त्रिपुरा रहस्य" की रचना की।

परशुरामजीको धनुर्वेदाचार्य कहा जाता है। धनुर्वेद का अर्थ है युद्धनीति अथवा युद्धशास्त्र। इस शास्त्र का उदय भगवान शंकर से हुआ और उस की प्राप्ति भिन्न भिन्न शिष्यों को हुई। उन शिष्यों में परशुराम अग्रगण्य है। उनके द्वारा प्रणीत धनुर्वेद "जामदग्न्य धनुर्वेद" के नामसे प्रसिद्ध है।

"यां सरहस्य धनुर्विद्या भगवान सदाशिवः परशुरामायोवाच"

महर्षि वसिष्ठजी का भी एक धनुर्वेद प्रसिद्ध है उसकी प्रस्तावना में उपरोक्त उल्लेख है।

धनुर्वेद में केवल भिन्न भिन्न अस्त्रोंका उपयोग करने में निपुणता किस प्रकार प्राप्त करना इसका उल्लेख मात्रही नहीं अपितु उनका वर्गीकरणभी किया है। अस्त्र किस प्रकार बनाए जावें, उनके लिए किन किन धातुओं का उपयोग किया जावे, उनका मिश्रण किस अनुपात में हो, उनके उत्तम

मध्यम और कनिष्ट रूप कौन कौन से है आदि बातोंका वर्णन किया गया है। इतनाही नहीं बल्कि कौनसे मंत्रों का उच्चार किये बगैर कौनसे अस्त्र उपयोग न किये जाय, इसकी भी सूचना दी गयी है।

केवल पुराण काल में प्रचलित शस्त्रास्त्रों का इसके द्वारां अध्ययन किया जा सकता है ऐसा नहीं, वरन् आज की कुछ समस्याओं का हल निकालने के लिए इन पुराने ग्रंथों के अध्ययन से कोई दृष्टिकोण प्राप्त हो सकता है। पुष्पक विमान यह एक कवि कल्पना की उडान मात्र न होकर वह एक वास्तविक घटना है यह आज भी विश्वसनीय माननें में कोई हर्ज नहीं। उनकी ओर हमें एक शास्त्र की दृष्टि से देखना चाहिये न एक काव्यात्मक संदर्भ के रूपमें। आज जब भिन्न भिन्न कृतियों का अथवा मिश्रणों का विवेचन हमें अध्ययन करने को मिलता है तब तो हमें उसे मान्य करना ही चाहिये। अब स्वतंत्रता प्राप्ती के बाद तो हमें उस दृष्टिकोण को त्याग देना चाहिये जो विजेताओं ने विजित लोगों पर प्रभावात्मक रूपसे लाद दिया था।

परशुरामजीके कार्यों का यदि सूक्ष्म रूपमें विवेचन करना हो और उनके लिए उनके कार्यों का केवल उल्लेख मात्र करना हो तो कितनी अवधी लगती है इसकी अबतक के विवेचन से आपलोगों को कल्पना आही गयी होगी। किसी भी एक विषय का चाहे फिर वह "त्रिपुरा रहस्य" हो या "जामदग्न्य धनुर्वेद" हो यदि सविस्तार वर्णन करना हो तो हरेक विषय के लिए एक एक सप्ताह भी पर्याप्त न होगा ऐसी कल्पना मुझे उन ग्रंथों को एक सरसरी तौर पर देखने से हुई है।

"परशुरामधव" ग्रंथमें व्यवहारकांड यह एक परिच्छेद है और उसमें राज्यशासन के लिए भिन्न भिन्न चार लोकसभाओं का उल्लेख है। यह ग्रंथ परशुरामजी द्वारा लिखित है क्या ? क्योंकि अपने शिष्यों को परशुरामजीने राजनीति का भी ज्ञान कराया था। अतः उपरोक्त शंका उदित होती है। भगवद्गीताके "यदा यदाहि धर्मस्य" इस सुप्रसिद्ध श्लोकानुसार भगवान

विष्णूनें भिन्न भिन्न प्रसंगोंपर अवतार ग्रहण किया है। इन अवतारों की संख्या भिन्न भिन्न मिलती है। 'दशावतार' यह उनमें से अधिक लोक-मान्य संख्या है। भागवतपुराण में बाईस अवतारों का उल्लेख है जब कि मत्स्य पुराण में केवल सातही अवतारों का वर्णन है। अन्यत्र यह अवतारों की मालिका सैंतीस या उनचालीस तक बढी हुई दिखाई देती है। किन्तु हर सूचिमें परशुराम हैं, यह तथ्य अनुलक्षणीय है।

भगवान के अवतारों के प्रकार भी बताये गये है। पूर्णावतार, अंशावतार, आवेशावतार इत्यादि। कुछ विद्वज्जन परशुराम को विष्णु का आवेशा-वतार मानते हैं। वे पूर्णावतारी हैं अथवा आवेशावतारी इस बात का भी प्रतिपादन गहन अध्ययन के द्वारा करना अत्यावश्यक है।

युगों से चले आ रहे नारद यह एक व्यक्ति न होकर एक संस्था होनी चाहिये, ऐसा कुछ लोगों का कहना है। उसी प्रकार परशुराम दाशरथी राम या बलराम कृष्ण के समय थे, इस कारण वे भी एक संस्था होंगे इस प्रकार का निष्कर्ष उनके चिरंजीवित्व के संबंध में निकाला जाता है। अर्थात् आज भी कुछ लोगों को सप्त चिरंजीवों में उनका उल्लेख उनके दीर्घायुषी होने के कारण है, ऐसा लगता है। उनके अंत का कहीं भी उल्लेख नहीं हैं अतः चिरंजीवित्व उनके नाम के साथ जोड दिया गया है इस प्रकार का युक्तिवाद भी वे करते हैं।

श्रद्धा और भक्ति की बैठक जिनके मनोमंदिर में स्थित है उन्हें परशुरामजी के चिरंजीवित्व में या उनके चिरंजीव कार्यों के बारे में कोई संदेह निर्माण नहीं होगा। परंतु विज्ञान से विभूषित आजके विद्वानों की बुद्धि को सप्रमाण उसे मान्य करा देने की आवश्यकता होती है।

भिन्न भिन्न विभूतियों को प्राप्त अनुभूती, भिन्न भिन्न संतोद्वारा प्राप्त प्रभुकृपा, उन्हें प्राप्त दर्शन और उनके द्वारा इन बातों का किया गया वर्णन मान्य करते हुए इसके बारे में निष्कर्ष निकाऊने का प्रयास करना आवश्यक है।

स्वयं पूर्णतया जागृतावस्था में होकर परशुराम का उसे दर्शन हो रहा है ऐसी अनुभूती यदि किसी व्यक्ति को हो तो उसकी उपपत्ती कैसे लगाइ जाय ?

सेवाभावसे परिपूर्ण रहकर श्रीस्वामीसमर्थ का दर्शन हो इस नाते छटपटानें वाले अेखाद भक्त को प्रात:कालके समय रास्तेपर एक अलौकिक विभूति दर्शन देती है। एकदम उसके मन में शंका उपस्थित होती है कि ये कौन है ? और उसे पहिचान होती है कि कहीं परशुराम ही तों नहीं ? और तुरंत उसके मन में विषाद निर्माण होता है। वह मन ही मन कहता है " महाराज मैं तो आपके दर्शन के लिए छटपटा रहा था, तो फिर परशुरामजी का दर्शन क्यों ?" इस प्रसंग की संगति आप कैसे लगायेंगे ?

एक सत्प्रवृत्त व्यक्ति को निद्रिस्त अवस्था में परशुरामजी से मंत्रोपदेश होता है। उठनें पर मंत्र ध्यान में नहीं आता। इसलिए छटपटानें पर मिलने वाले व्यक्तिद्वारां मंत्र का पुनरुच्चार किया जाता है इसका कार्यकारण भाव आप किससे लगाएगे ?

मेजर गागारीन पृथ्वीकी प्रदक्षिणा लगभग मनोवेग से लगा सकते है। इस बातको कुछ दिनों पूर्व क्या कोई मान्य कर सकता था ? किन्तु आज भी अनुमान से क्यों न हो हम उस पर विश्वास करतेही हैं न ? भिन्न भिन्न ग्रह मंडलोंपर सचेतन प्राणी होगा ऐसा खगोल शास्त्रीयोंने प्रस्तुत किये हुए अंदाज हमें मान्य है। तो विश्वमंडल के भिन्न भिन्न लोगोंका आर्यधर्म ग्रंथो में किया गया उल्लेख अंधश्रद्धा का विषय क्यों है ? भिन्न भिन्न अनुभूतियों को इकठ्ठा कर उनका अध्ययन करने पर मानसशास्त्र के आधारपर उनका विश्लेषण करनेपर परशुरामजी के चिरंजीवित्व में वैज्ञानिक उपपत्ती सिद्ध करना किसी को भी कठिन न होगा।

अभीतक मैंने भगवान परशुरामके चरित्रका सर्वसाधारण रीतीसे विचार करके यह प्रस्तुत करनेका प्रयास किया कि, उनका कार्य केवल क्षत्रिय संहारादि नहीं था वस्तुत: वह उनके अवतार कार्यों की विविध झाँकियों का

अेक अंगमात्र है । प्रवर्तक समाजकी पुनर्व्यवस्था करना इतनाही उनके इस कार्यका महत्त्व है किन्तु इसके अतिरिक्त धनुर्वेदाचार्य कहा जाय इतना युद्धनीतीशास्त्रपर प्रभुत्व, केवल नवीन भूप्रदेशका निर्माणही नहीं तो उसपर उपनिवेश की स्थापना, उसे कर्मभूमी माना जाय, इस प्रकारकी समाज व्यवस्था का निर्माण कार्य, तंत्र शास्त्र का सर्वसाधारण जनताके लिए गुरु के द्वारा सुलभ रुपांतर करा लेना, कृतकार्य होते हि नवीन युग प्रारंभ के लिए दिया हुआ स्वतेज का आविष्कार इत्यादि विविध झाँकियों के कारण वे दशावतारों में सर्व श्रेष्ठ हैं। इतनाही नहीं, तो एक आदर्श युग पुरुष इस नातेसे उनका उल्लेख करना आवश्यक है। शनैः शनैः हमें यह स्पष्ट होने लगता है कि, शस्त्र नहीं केवल शास्त्रहि परशुराम को अधिक प्रिय रहा होगा।

उपलब्ध समयमें इससे अधिक गहराई में जाना मुझे संभव नहीं। इसके लिए अधिक गहन अभ्यास करके अधिकृत चरित्र तैय्यार करनेकी आवश्यकता है। अध्ययन करनेकी दृष्टीसे भी एक व्यापक योजना निर्माण करनी चाहिये। वैदिक कालसे प्रारंभ करके हमें त्रेतायुगतक आना पडेगा। आख्यायिकाएँ, स्थान महात्म्य, दंत कथाएँ हमें इस कार्यमें पर्याप्त सहायता दे सकतीं हैं। शिल्पकला, देवालय, उनमें स्थित मूर्तीयाँ एवं शीलालेख हमें इस गुथ्थी को सुलझानेमें बडे सहायक हो सकते हैं। अंतमें जितनाभी परशुरामका अप्रकाशित साहित्य है, उनके परिशिष्ट बनाना यहभी एक अध्ययनीय विषय हो सकता है। सत्य और द्वापर युगोंमें जब परशुराम प्रकट हुए है, उन प्रसंगोंका भी विचार करना पडेगा। पाश्चात्य विचार धाराका हमपर प्रभाव पडनेके पश्चात् जो आधुनिक साहित्य निर्माण हुआ है, उसका भी विचार करना पडेगा। भिन्न भिन्न विचार धाराओं का परामर्श लेना आवश्यक है। यदि हमारा अध्ययन गहन रीतिसे न किया गया हो तो अनुवादकर्ताओंके विविध दृष्टीकोण हमारे लिये कष्टप्रद सिद्ध हो सकते हैं। उदाहरण स्वरुप श्री गणेशका परशुरामसे जो संबंध आया वह दिखाया जा सकता हैं। श्रीगणेश को जो अेक दंत कहा जाता है, वह परशुरामसे हुए झगडेमें अेक दाँत

गवाँ बैठने के बाद । कथा ऐसी है कि एक बार जब परशुराम अपने परम-गुरु कैलाशपती शंकरजी के दर्शनार्थ गये तो पिताजी निद्रिस्त होनेके कारण गणेशजीनें उन्हें जानेसे रोका। दोनोंमें झगडा हो गया। गणेशजीने अपने सूंड द्वारा परशुराम को बहुत दूर फेंक दिया ओर वे बेहोश भी हो गये। किन्तु परशुराम ने उसी समय जो फरसा फेंक कर मारा उसके परिणाम स्वरुप गणेशजी अेक दाँत गवाँ बैठे। इस प्रकार श्री गणेश पराभूत हुए । इधर भार्गवरामने फेकें हुए अस्त्र को देखतेही गजानन समझ गये कि यह अस्त्र अपने पिताजीनेही उनके भक्त को दिया है। बडी नम्रतासे उन्हो ने उस अस्त्र को अपने दांत पर गिरने दिया और इस प्रकार वे एक दंत कहलाए गये। इस आशय के विचार दूसरे स्थानपर प्राप्त होते है।

इसे श्री गणेशजी की हार कहा जाय या पिताजीके अस्त्र संबंधीं आदर होनेसे प्राप्त हुई नम्रता ? प्रसंगका मूल्यमापन करने के लिए योग्य दृष्टीकोण होना कितना आवश्यक है। यह इस उदाहरणसे जाना जा सकता है।

वसुदेवहिंडी अथवा त्रिषष्ठिशलाका पुरुषचरित्र आदि जैन ग्रंथोंमें परशुराम का उल्लेख यद्यपि विसंगत प्रतीत होता है तथापि उन ग्रंथोंका परिशीलन भार्गवरामके कार्योंका अध्ययन करने की दृष्टीसे निश्चित उपयोगी सिद्ध होगा ।

कामधेनु हुई तो भी वह केवल एक चतुष्पाद पशुही तो है। उसके लिए इतना बडा संहार किया जाय यह संभव नही ऐसा कुछ लोगोंका मत है। अथर्ववेद में राजन्य की पत्नि के लिए 'वसा' इस शद्बका उल्लेख है। अतः वसा का अर्थ गाय न करते हुए स्त्रीही किया जाय। कामधेनू और वसा ये समानार्थी शद्ब होने के नाते स्त्रीके अपहरण के दृष्टीसे सहस्त्रार्जुन के दृष्टांत की ओर देखना पडेगा ऐसा भी कई विद्वानों का सुझाव है।

वीर शैवोंके ग्रंथमें कई स्थानोंपर रेणुकाचार्यका उल्लेख है। ये रेणुकाचार्य रेणुकेयाचार्य अथवा रैणुकाचार्य तो नहीं है न? इस प्रकारकी शंका निर्माण हो जाती है।

परशुराम यज्ञयागादि कर्मों के इष्ट देव प्रतीत होते हैं। वैष्णवी ऋग्वेदी ब्रह्मकर्म में "वासुदेवाभिन्नरूपपरशुरामप्रीत्यर्थम् सायम् होमम्" इस प्रकार का अथवा वैश्वदेवके समय "श्रीहारिणीपतिपरशुरामप्रीत्यर्थे सायंप्रातवैश्वदेवाख्यं कर्म करिष्ये" ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है।

परशुरामके देवस्थानोंका अध्ययन करना हो तो वह भी एक प्रचंड कार्यहि है। उनके देवस्थान समस्त भारतमें बिखरे हुए हैं। हिमाचल प्रदेशमें कांगडाकी घाटी में, बद्रीकेदार मार्गपर ज्योतिर्मठके समीप, गोहत्ती के पास आसामके पहाडोंमें परशुराम के मंदिर हैं। महूके समीप जानापावके पठारपर परशुरामका जन्म हुआ, ऐसा स्थानिक- क्षेत्र माहात्म्यसे प्रतीत होता है। माहूरगड तो मराठवाडामें संत कवियोंका जाज्वल्य स्फूर्तिस्थान है। साल्हेरके दुर्ग में परशुरामगिरी है, वहाँ परशुरामजीने तपस्या की थी, और वहींसे समुद्रको पीछे हटाया ऐसा माना जाता है। चिपळूनके समीप महेंद्र पर्वतपर आजभी रात्रीमें परशुरामका निवास रहता है, ऐसा पुराणोंके उल्लेखसे प्रतीत होता है। कन्याकुमारीके मंदिरोंसेभी परशुरामका संबंध है। इसके अतिरिक्त कई छोटेबडे देवालयोंकी सूची बनायी जा रही है। उन देवालयोंका अध्ययन, वहाँकी मूर्तियोंका निरीक्षण, इर्दगिर्द प्रचलित आख्याइकाएँ और दंतकथाएँ हमें परशुरामके अवतार कार्यका मूल्यमापन करनेके लिए उपयोगी सिद्ध होंगी। इस कार्यका विस्तार कितना है यह उपर्युक्त चर्चासे हमें स्पष्ट हो सकता है।

परशु धारण करने के कारण रामको यह नाम प्राप्त हुआ। फिरभी परशु इस शब्द का संबंध ऋग्वेद के पर्शूसे जोडकर इराणमे पर्शु जाति भी यही होगी ऐसी शंका कई विज्ञानोंने निकाली। गणेशपुराणमें बर्बर जातियोंके उल्लेखसे भार्गवका इराणसे भी संबंध होगा ऐसा तर्क कई लोगोंने किया है।

परशुरामकी माता रेणुका, इन्ही के एकवीरा, कुंकणा और यल्लम्मा ये नाम प्रचलित है। यल्लम्मा देवीके पर्वतपर मुख्य देवीके आतिरिक्त जमदग्नी अथवा परशुराम इनके अलग अलग मंदिर भी हैं। रेणुकाके ये नाम कब और कैसे प्रचलित हुए इसका अनुसंधान अनेक विद्वान कर रहे हैं, ऐसा मुझे विदित हुआ है। क्षत्रियकन्या और ब्राह्मणपत्नी समाजकी पिछडी हुई और वन्य जातियोंकी देवी कब और कैसी बनी ? आज भी जहाँ लाखों यात्री इकट्ठे होते हैं ऐसा भक्तिस्थान उन्हें किस प्रकार प्राप्त हुआ ?

इन सब बातोंका अध्ययन करना हो तो उपलब्ध साहित्य पढना आवश्यक है। कालके अनुसार उनके अनेक संस्करण निकले होंगे। केवल महाभारत-काही शुद्ध संस्करण प्राप्त है। सौभाग्यसे रामायण के बालकांडमेंही संदर्भ प्राप्त होता है। उसका भी शुद्ध संस्करण बडौदा विश्वविद्यालयने प्रकाशित किया है। किन्तु पुराण विविध कालखंडोंमें पैदा हुए हैं। उनमें बारबार उसी विषयपर चर्चा होनेपर भी विसंगति प्रतीत होती है। भेदभी व्यक्त होते हैं। कल्पभेदके कारण यहभी सत्यही है अतः विश्वसनीय है ऐसा पुराण-कारोंके कहनेपर भी उनमेसें कौनसा भाग ग्राह्य एवं सुसंगत है यह भी निश्चित करना पडेगा।

केरलमें 'कोल्लमांड्र' इस मल्याली नामसे संबोधित परशुराम-शक चालू है। ऐसा कहा जाता है कि इस शक का प्रारंभ ३५०० वर्ष पूर्व हुआ। इस शक का प्रारंभ किस प्रसंगके कारण हुआ तथा इस शकके बारेमें इतिहासमें या अन्यत्र कहीं उल्लेख मिलता है या नहीं यह भी एक संशोधनकाही विषय है।

कोझाकट्टा यह एक मल्याली खाद्यपदार्थ है। और वह परशुरामके फलाहारमें से एक है ऐसा केरल के निवासी मानते हैं। उस समाजके प्रचलित रीतिरिवाज आदिके अध्ययनसे भी कुछ नई सामग्री प्राप्त करना संभव है।

इस कार्य की व्याप्ति कितनी है, यह आपके ध्यानमें लाने हेतु अध्ययनके भिन्न भिन्न पहलू मैने आपके सामनें संक्षेपमें प्रस्तुत किये हैं। उसके लिए

आवश्यक विद्वत्ता और व्यासंग का मुझमें मुख्य तौरसे अभाव है, इसकी मुझे कल्पना है। यदि पूर्णतया व्यस्त कर लिया जाय तौभी अनेक व्यक्तिओंको पर्याप्त होगा इतना यह विषय विस्तृत है। मेरे हाथों स्वल्प सेवा हो और उसे स्वयं भार्गवराम अपने हाथों पूर्ण करावें ऐसी मनीषा है। "मूकं करोति वाचालम् पंगुं लंघयते गिरीम्" ऐसी जिस प्रभुमें शक्ति है, वह प्रभू भार्गवराम यह कार्य मेरे द्वारा निश्चित पूर्ण करावेंगे, ऐसी मेरी दृढ श्रद्धा है। इस निमित्तसे ही भार्गवराम की स्वल्पसी सेवा करने की संधि प्राप्त हुई तो मैं स्वयंको कृत कृत्य समझूंगा।

अंधश्रद्धासे अेकांगी चरित्र रचना की जाय ऐसी मेरी भावना कभी भी नहीं हुई। परमसद्गुरु श्री गजानन महाराज के मुख कमलसे कईबार परशुराम के चरित्र के विषय में कुछ श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। परिणाम स्वरुप निर्माण हुए दृष्टीकोण से मैं परशुरामके अवतार कार्योंकी ओर देखने लगा। इस विषय के संबंध में जो विविध विचार धाराएँ मुझे भिन्न भिन्न ग्रंथोंमें दिखाई दीं उनका भी उपयोग करने का मैंने प्रयत्न किया है। किन्तु इस सबके विषयमें सविस्तार सूचना देना इस समय अत्यंत कठिन है। मैं उन लेखकोंका अत्यंत ऋणी हूँ।

आप सब लोगों का मैंने पर्याप्त समय लिया है। मेरे मनमें जो भावनाए हैं, उन्हें शब्द रूपमें व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। किन्तु वह कहाँ तक सफल हुआ है इसके निर्णायक आपही है। परशुरामके समस्त अवतार कार्य अद्भुत है। इसी प्रकारके एखाद दूसरे भाषणसे उनकी महत्ता का वर्णन करना कठिन है। आप लोग यदि उस ओर आकर्षित हुए तो वह परशुरामके तेजकाही प्रभाव समझना चाहिये। परशुरामके कार्योंका प्रसार हो ऐसी जो अेक परमसद्गुरु श्री गजानन महाराज की उत्कट इच्छा है, उसी की यह लीला है। उन्हींको यह कार्य करा लेना है। उनकी चरण वंदना करते हुए और आप सब लोगों के आभार मानते हुए मैं अपना कथन यही समाप्त करता हूं।

• • •